ISSN Print: 2394-7500
ISSN Online: 2394-5869
Impact Factor (RJIF): 8.4
IJAR 2025; 11(2): 118-121
www.allresearchjournal.com
Received: 12-12-2024
Accepted: 14-01-2025

नारायण सिंह
शोधार्थी, हिंदी विभाग, कुवेंपु विश्वविद्यालय, शिमोगा, कर्नाटक, भारत

Corresponding Author:
नारायण सिंह
शोधार्थी, हिंदी विभाग, कुवेंपु विश्वविद्यालय, शिमोगा, कर्नाटक, भारत

मणि मधुकर के 'पत्तों की बिरादरी' उपन्यास में चित्रित राजस्थानी लोकजीवन

नारायण सिंह

DOI: https://doi.org/10.22271/allresearch.2025.v11.i2b.12347

सारांश
'पत्तों की बिरादरी' मणि मधुकर द्वारा रचित उपन्यास है। जिसका प्रकाशन सन् 1979 में वाणी प्रकाशन नई दिल्ली से हुआ है। मणि मधुकर राजस्थान के प्रमुख लेखकों में अपना स्थान रखते हैं। जिन्होंने पूरी प्रमाणिकता के साथ राजस्थान की माटी में रचे–बसे जीवन को अपनी लेखनी से जीवंत किया है। 'पत्तों की बिरादरी' उपन्यास उनकी इस प्रमाणिक लेखन कुशलता का एक उदाहरण है। राजस्थान के पश्चिमी भू–भाग के सूखे में जीवन संघर्ष करते जीवन को शब्दों के माध्यम से साकार करने का कार्य मणि मधुकर की कलम ने बहुत कुशलता से किया है। 'पत्तों की बिरादरी' उपन्यास में मणि मधुकर ने राजस्थान के पश्चिमी सीमावर्ती इलाके के दुर्गम एवं कठिन जीवन जीते हुए चरित्रों को उकेरा है। पश्चिमी राजस्थान में एक तरफ जहाँ सूखे का प्रकोप होता है वहीं, खाने–पीने की कमी बनी रहती है। सीमावर्ती भाग होने के कारण से सदैव बंदूकों का साया बना रहता है। इन सब संघर्षों के मध्य लूट मचाते अपराधी प्रवृत्ति के शोषकों का अत्याचार, इस सारे संघर्ष को ओर ज्यादा मार्मिक बना देता है। जीवन संघर्ष के चलते उजड़ना–बसना मानव जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी ही कही जाएगी, उपन्यासकार के शब्दों में,'' एक भरा–पूरा दरख्त होता है और उसमें पत्ते रहते हैं। पत्ते क्या होते हैं, दरख्त के लिए? दरख्त एक ढाणी है, एक गाँव है और पत्ते उसके बाशिंदे होते हैं। साथ बोलते हुए, एक–सा जीवन जीते हुए वे एक ही बिरादरी के अनेक लोग! लेकिन ऋतुओं की मार से जब पेड़ उजड़ने लगता है तो पत्ते सूख–सूखकर गिरने और बिखरने लगते हैं। अपने गाँव–घर को छोड़–कर, दुःख–दैन्य के बोझ को ढोते हुए, वे पत्ते जाने कहाँ–कहाँ तक रेलों में बहते–उड़ते चले जाते हैं। यही है पत्तों की बिरादरी!''[1]

कूट शब्द: मणि मधुकर, कम्फ, अकाल–दूरभिक्ख, पत्तों की बिरादरी, सीमावर्ती, रेगिस्तान, नाज–पानी, डूँगर

प्रस्तावना

कथासूत्र एवं पात्र

'पत्तों की बिरादरी' पश्चिमी राजस्थान में अकाल की स्थिति से जूझते हुए, सरकारी कैम्पों में अपने जीवन के लिए संघर्ष करते लोगों की कथा है। अकाल के मारे लोग पहले तो सरकारी कैम्पों में प्रवेश के लिए संघर्ष करते हैं, उसके बाद कैम्प में दिन–रात मेहनत के बाद कुछ बेईमान व अत्याचारियों, जिनको सरपरस्ती मिली हुई है अपने राजनीतिक आकाओं की उनके अत्याचारों, शोषण व अमानवनीय व्यवहार का सामना करते हुए किसी तरह जीवन का एक–एक पल निकालते हैं। 'पत्तों की बिरादरी'' में प्रकृति के प्रकोप व जीवन की तलाश में एक जगह से दूसरी जगह भटकते हुए इंसान को ही कथा बनाया गया है। जैसे ही अकाल आता है पेड़ों के पत्ते अपनी जगह से झड़कर अलग हो जाते हैं। वही पत्तें लौट आते हैं जब प्रकृति अपनी मधुर पावन छाया से जीवन को पुनः सरोबार करती है। अकाल पीड़ितों के लिए लगे कैम्प का वर्णन करते हुए उपन्यासकार चित्रण करते हैं,'' कम्फ इँदस्तान की सिरकार ने लगा रखा था। अकाल–दूरभिक्ख के कारण बेघरबार हुए लोगों की मदद के लिए। ऐसे नौ–दस कम्फ और थे, उस इलाके में।''[2] एक और कैम्प का दृश्य,'' यह छतना कम्फ कहलाता था। बीच में तल्ली का मैदान। चारों ओर टीले, पेड़ और थूहर–सरकंडे का जंगल–झाड़। वहाँ से जैसलमेर तक सड़क बनायी जा रही थी। कम्फवालों को उस काम पर लगा दिया गया था। मजूरी के रूप में मिलता था, नाज–पानी दोनों जून के लिए हरेक को डेढ़ सेर आटा, एक प्याज, मिरच–लूण और तीन डबरे पानी। सबने अपने–अपने ढंग से गिरस्ती जमा ली थ। पत्थर रोपकर चूल्हे बना लिए थे। घास–फूस –लकड़ियाँ इधर–उधर से बटोरकर आग जलायी जाती थी और जिसकी जैसी सहूलियत होती थी, रोटी–बाटियाँ मॉडकर पका ली जाती थी।''[3] उपन्यास की कथा अकालग्रस्त लोगों के लिए बनाए गए कैम्प में गढ़ी हुई है। कथा के सभी चरित्र एक–एक करके अपना अस्तित्व कैम्प में घटने वाली घटनाओं में ही पाते हैं। कथा का घटनाक्रम कैम्प के ही इर्द–गिर्द बुना गया है।

सभी कथा चरित्र अपनी अपनी विशेषताओं के साथ कथा में अपना योगदान देते हैं। कथाकार ने पात्रों को सृजन राजस्थान के लोक परिवेश को पूरी तरह ध्यान में रखकर ही किया है। पात्रों के नाम प्रायः राजस्थानी लोकजीवन में मिल ही जाते हैं। पात्र परिचय दर्शाती एक पंक्ति,'' कम्फ में तीन बड़े तम्बू थे। एक पुसपा बाई का, दूसरा इग्यारसीलाल का, तीसरा ठीकेदार बछराज का।''[4] अन्य पात्रों में शुवो, सुवटी, ज्यानकी काकी, फुलकी, जैतपालसिंघ, बदरू मियाँ, हद्दी, जमाल, सिराम, गज्जी, गोदारी आदि। पात्रों का चित्रण राजस्थानी लोकजीवन के परंपरागत स्वरूप का ध्यान में रखते हुए ही किया गया है।

राजस्थान का ग्राम परिवेश

उपन्यास में लेखक ने पश्चिमी राजस्थान के सीमावर्ती क्षेत्र के जीवन और जीवन–संघर्ष को चित्रित किया है। पश्चिमी राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों की भौगोलिक विशेशताओं का चित्रण कथाक्रम का विकास करता है। पश्चिमी राजस्थान के रेगिस्तानी क्षेत्र का दृश्य,'' तम्बओं के तिरपाल फड़फड़ाती हुई हवा बेचैनी से घुमेरी लगा रही थी। उसके संग–संग रेत। अँधेरे और सुन्न–सुन्न सन्नाटे में जैसे कोई सड़–सड़ाक सोंटियाँ बरसा रहा हो, ऐसी आवाज। आड़े–तिरछे टीबों और बिरछों में उलझी हुई रात की रहस्यमयी आकृतियाँ उस आवाज से अस्त–व्यस्त हो उठती थी।''[5] वहीं रेगिस्तान के ग्राम जीवन में पेड़–पौधों के जीवनदायी होने को दर्शाती एक पंक्ति,'' तभी उसे मुरचिया की एक टहनी दिखलायी दी। सूखी, काली टहनी। पौधा कभी का मुरझाकर मर चुका था। स्यात उसकी जड़ों में कुछ जान हो।''[6] '' वाऊ हो! यह मुरचिया की गण्ठी मिल गयी है, देखो! इसे मुँह में रख लो, आस्ते–आस्ते थोड़ी तो तरावट आयेगी ही।''[7]

उपन्यास का मूल कथ्य चूंकि अकाल की विभीषिका है, इसलिए कथाकार ने अकाल से पीड़ित ग्राम जनों की पीड़ा और असहाय स्थिति को अत्यंत मार्मिकता के साथ प्रस्तुत किया है,'' इस बीच एक अजीब किस्म की बेम्मारी फैल गयी। बदन में थरथरी होती थी, ताप बढ़ता था, गला रूकता था और फिर पलापल में आदमी खतम। चींटी–भुनगों की तरह लोग मरने लगे। टीबों पर लाशें नजर आने लगीं। कौन उठाये, कौन जलाये–दफनाये? चील–कौवों की बन आयी थी। गिद्ध चोंचें लड़ाते रहते थे। सियारों की हुआँ–हुआँ जमराज की पुकार लगती थी। भूख का हवाल यह था कि खेजड़ों–पेड़ों की छाल भी उतार पीसकर खायी जानी लगी। थूहरों के गूदे को इमरत मान लिया गया। पेट भरने के लिए लोग घास–फूस को मसोसकर निगलने लगे।''[8] पश्चिमी राजस्थान के भौतिक स्वरूप को दर्शाती हुए लिखते हैं,''लूओं की सनसनी इन दिनों बढ़ गयी थी। जब्बर झफोड़े चल रहे थे। बालू भड़भूँजें के भाड़ की तरह भभकती रहती थी। बिना पगरखी के जमीन पर पाँव टेकना कठिन था। रेत के ढूह रात में भी तपते रहते थे।''[9] ''आगे थूहर–सरकण्डे का घुप्पाघुप्प वन था।''[10] पश्चिमी राजस्थान के लोकजीवन में खेजड़ी वृक्ष के फल 'खोखा' का विशिष्ट महत्व है। इसका उपयोग मानव व पशु दोनों ही द्वारा किया जाता है। ''खेजड़ों पर मीठे–मीठे खोके लदे पड़े हैं, जी भरकर खाओ और ऊपर से एक मुठ्ठी दाना चबा लो। बस, पेट की छुट्टी।''[11] उपन्यासकार ने राजस्थान के ग्राम जीवन को जीवंत रखा है। चाहे वह अकाल का दृश्य हो या गाँव के जीवन में पेड़–पौधों और भौतिक वातावरण का प्रभाव। सभी को लेखक ने अत्यंत प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

लोकजीवन का सामाजिक परिवेश

उपन्यासकार ने कथासूत्रों को पात्रों के माध्यम से बहुत ही सहजता के साथ विकसित किया है। एक–एक करके पात्र आते हैं, किंतु प्रत्येक पात्र अपनी ही विशेषता लिए हुए कथा को आगे ही बढ़ाता है। पात्रों के मध्य जो एक संबंध सबसे ज्यादा गहरा था वह है उनकी गरीबी और जीवन जीने का संघर्ष। कथा में जैसलमेर, जोधपुर व बाड़मेर के सीमावर्ती भाग के भौतिक एवं मानवीय विशिष्टता का चित्रण मिलता है। ग्राम जीवन का एक चित्र,'' कम्फ सोने जा रहा था। स्त्रियाँ बच्चों को थपकी दे रही थीं। उन्हें झींडिये और लक्खी बिणजारे की कहानियाँ सुना रही थी। मरद हुक्कों की नाल, तम्बाकू के ताव और बातों के उलझाव में मशगूल थे।''[12] वहीं सामाजिक परिवेश को दर्शाती एक पंक्ति,'' कैसे नहीं जानूँगा? जनम से बावरिया–भील हूँ। शिकार करके पेट पालता हूँ।''[13] राजस्थान के ग्राम समाज में लोकगीतों का विशेष महत्व है। जीवन के प्रत्येक अवसर के लिए गीत–गाए जाते हैं। पश्चिमी राजस्थान के मुख्य अनाज बाजरे के संबंध में उकेरी गयी पंक्ति,'' जमाल ने 'म्हानै लागै घणौ सुवाद लीलो बाजरड़ो' गीत टेर दिया।''[14] एक और उदाहरण,'' डूँगर चढ गयी डोमनी, गावै आल–पताल। सुवटी ने भी राग अलापना और धौंस जमाना शुरू कर दिया।''[15] ग्रामजीवन में किसान के लिए अनाज की महत्ता को दिखाती पंक्तियां,'' वह खुश था, और एक ठेठ किरसाण की तरह यह सोचकर कि जब तक 'नाज' है, तब तक 'आज' है।''[16] '' माँ कहती थी, अनाज के दानों में बड़ा ताप, बड़ा उजास होता है। शुवो आज उसी ताप और उजाले की शक्ति का अनुभव कर रहा था।''[17] राजस्थान के ग्राम समाज का चित्रण करने के लिए उपन्यासकार ने ग्राम समाज के प्रचलित स्वरूप को ही चित्रित किया है। फिर वह चाहे लोकगीत हों या अनाज और धान्य की महत्ता। जातिगत विभेदिता हो या पीड़ा को भोगता किसान। ग्राम समाज का चित्रण अत्यंत प्रभावी रहा है।

भाषा व शब्दावली

'पत्तों की बिरादरी' में उपन्यासकार ने राजस्थान की ठेठ शब्दावली का प्रयोग किया है। भाषा का जो लोक–लहजा होता है, उसे उसी रूप में उकेरने का कार्य कथाकार ने किया है। सुवटी शुवो का बताते हुए कहती है,'' भिस्की बोलते हैं उसे, भिस्की। बाड़मेर से आती है पुसपा बाई के लिए। रोज एक बोतली चाहिए उसको। दिन–रात पीती है और मस्ताई छाँटती है।''[18] इस पर ज्यानकी काकी बोलती है,'' भिस्की क्या –दारू ही है। नाम इंगरेजी रख दिया है''[19] शुवो और जुगनी के मध्य एक संवाद में पश्चिमी राजस्थान की लोकबोली के दर्शन होते हैं,'' इधर के मिनख कैसे है?'' ''मिनख तो न इधर के बुरे हैं, न उधर के। लेकिन, क्या बतायें– सरकारू टांग सब जगह अड़ी हुई है।''[20] बदरू का संवाद शुवो के साथ,'' जैतपालसिंग की सुपारस और कांगरेस पाल्टी के एक बड़े नेता को तगड़ी घूस देने के बाद यह कम्फ मिला है, पुसपा बाई को।''[21] संवादों में किसी प्रकार की अलंकारिकता रखने का प्रयास नहीं हुआ है। अपितु लोकजीवन में जिस प्रकार परस्पर संवाद किया जाता है, उसी को चित्रित किया गया है। कथाकार ने पात्रों के परिवेश का ध्यान में रखते हुए संवादों में किसी प्रकार की गाली का प्रयोग करने से भी गुरेज नहीं रखा है। बछराज और अचली के मध्य होता एक संवाद,'' तुमने तो, जो भी तुम्हारे सम्प्रक में आया, उसे बरबाद कर दिया। औरत की देह में डाकणी हो तुम!''[22] बछराज गुस्से से बोलता है,'' तू स्साली कुतिया, साँच बोलेगी कभी? झूठ और फरेब की सड़ाँध में सड़ चुकी है तू। कितनी बार, कितनी तरह से झूठ बोलती रही है, तू मर समान।''[23] कैम्प में होने वाले शोषण की अभिव्यक्ति करते समय कथाकार ने शब्दावली का प्रयोग करते समय उसके भावों व संवेदना को बनाए रखने का प्रयास किया है। इसलिए जब कभी गुस्से और आक्रोश की अभिव्यक्ति हुई है गालियों का प्रयोग भी हुआ है। कुछ संवाद जिनमें कथाकार ने पात्रों के आक्रोश और गुस्से को चित्रित किया है,'' रण्डी तो तू थी ही। उसका ब्यौहार गलत नहीं था।''[24] ''देख क्या रही है फूलकी, मार कमीनी के दो जूते! इस पर बड़ा मद छा गया है जोवन का।''[25] '' कंजर की औलाद, जब मैं यहाँ बैठ रही थी तब क्यों नहीं बताया।''[26] '' टट्टू की औलाद है स्साला!

ठोकर से मानेगा, बात से नहीं।''[27] उपन्यास में पात्रों के मध्य संवादों में लोकजीवन की शब्दावली को उसी रूप में ठेठ देशी चित्रित किया गया है। इससे कथा का प्रवाह बना हुआ रहता है। कथाकार ने विशेष रूप से यह ध्यान रखने का प्रयास किया है कि कथा के अधिकांश पात्र अनपढ़ हैं, इसलिए उनके बोलने में राजस्थानी भाषा की शब्दावली के शब्दों में प्रायः पूर्ण वर्ण का ही उच्चारण रखने का प्रयास किया है। जैसे– कांग्रेस के लिए कांगरेस, सिफारिश के सुपारस, अंग्रेजी के इंगरेजी, दुर्भिक्ष के लिए दुरभिख, भयभीत के लिए भैभीत, उत्सव के उच्छब, पार्टी के लिए पाल्टी, जयपुर के लिए जैपुर, यमराज को जमराज आदि। उपन्यासकार ने राजस्थानी लोकजीवन में प्रायः बोले जाने वाली शब्दावली का प्रयोग करके पाठक के लिए पात्रों और परिवेश से जुड़े रहने का सेतु बनाया है।

राजस्थानी लोकसंस्कृति का चित्रण

मणि मधुकर जी का स्वयं की जन्मस्थली राजस्थान रहा है, इसलिए राजस्थान के लोकजीवन में प्रायः बोली जाने वाली कहावतों, मान्यताओं, विश्वास, लोकगीतों आदि से उनका परिचय रहा है। इसलिए इस उपन्यास में उन्होंने राजस्थान की लोकसंस्कृति के विभिन्न तत्वों को चित्रित करने का प्रयास किया है। ग्राम जीवन में आपसी संवादों के दौरान प्रचलित कहावतों का प्रयोग बहुत आम होता है। इसका ही उदाहरण है,'' दो दिन की हल्दी है। कब तक नखरे करेगी!''[28] '' मन–मन भावे ,मुँडी हिलावे।''[29] ''असल में भगवान–अगवान कुछ होता नहीं, लेकिन विश्वास करने लगो तो मन कमजोर हो जाता है। इसलिए सदा पीठ ही रखो उधर।''[30] एक और उदाहरण,'' कम्फ में मरद कोई नहीं, सब चूहे हैं। नाज खाते हैं और मींगणी करते हैं।''[31] इसी प्रकार ''महीने तो मुसाफिर होते हैं। बैसाख गया, जेठ भी गुजर गया और अब असाढ निकला जा रहा था।''[32] उपन्यासकार ने लोकजीवन में रची–बसी कहावतों का प्रयोग करने में कोई कंजूसी नहीं बरती है। कहावतों की विशेषता यह है कि हर कहावत लोकजीवन के ही किसी न किसी भाग का हिस्सा है। कथाकार ने लोकजीवन की मान्यताओं को भी कथाक्रम में आवष्यकता अनुसार स्थान दिया है। उदाहरणतः ''जमाल के लड़कस होने पर फुलकी ने काँसी की थाली उठायी और उसे काठ की डोई से बजाने लगी।''[33] राजस्थानी लोकजीवन में लड़के के जन्म पर काँसे की थाली बजाकर परिवार जन गाँवभर में अपनी खुशी का इजहार करते हैं। एक और चित्र प्रस्तुत है,'' सात चिकने रंगीन पत्थर इकट्ठे कर बाशिया सगुन ले रहा था। यह विद्या उसने गोदारी से सीखी थी। जब विपदा आये, पत्थरों की बात सुनो। वह उन्हें हवा में उछाल रहा था। पत्थर अक्कास की बानी पकड़ लेते हैं और भविस–काल का हाल–हवाल बता देते हैं।''[34] राजस्थान के लोकजीवन में मान्यताओं, विश्वासों, कहावतों आदि का रचा–बसा सघन संसार है। उपन्यासकार ने राजस्थान के लोकजीवन के उसी यथार्थ स्वरूप को बनाए रखने के लिए प्रभावी रूप से इनका चित्रण किया है।

निष्कर्ष

पत्तों की बिरादरी' उपन्यास वास्तव में राजस्थानी लोकजीवन की जीवंत यात्रा है। मणि मधुकर जी ने पश्चिमी राजस्थान के लोकजीवन की अत्यंत ही प्रभावी अभिव्यक्ति की है। चाहे लोकजीवन की भाषा व शब्दावली हो जिसमें जीवंत वार्तालाप और संवादों का आदान हो या लोकजन के बीच होने वाला गालियों का आदान–प्रदान। अपने लेखन में राजस्थान लोकजीवन में रची–बसी कहावतों का प्रयोग करने में कोई कंजूसी नहीं बरती है। इसी प्रकार लोकगीतों, लोकमान्यताओं को भी उसी मौलिक स्वरूप में चित्रित किया है। समग्रता में कहा जाए तो 'पत्तों की बिरादरी' में मणि मधुकर ने राजस्थान के लोकजीवन का एक प्रमाणिक चित्र साकार किया है।

सन्दर्भ

1. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 25
2. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 13
3. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 13
4. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 10
5. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 9
6. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 18
7. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 18
8. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 139
9. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 60
10. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 68
11. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 78
12. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 68
13. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 86
14. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 151
15. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 117
16. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 49
17. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 50
18. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 27
19. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 27
20. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 76
21. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 84
22. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 88
23. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 88
24. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 89
25. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 92
26. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 114
27. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 45
28. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 29
29. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 29

30. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 33
31. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 35
32. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 139
33. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 64
34. पत्तों की बिरादरी, मणि मधुकर, 1979, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ 100